7094

तित्थयर

जैन भवन

वर्ष ४ अंक ९ : जनवरी १९८१

बनारसी साड़ी

इण्डियन सिल्क हाउस

कॉलेज स्ट्रीट मार्केट • कलकत्ता-१२

PRAKASH TRADING COMPANY

12 INDIA EXCHANGE PLACE
CALCUTTA-700001

Gram : PEARLMOON

Telephone : 22-4110
22-3323

THE BIKANER WOOLLEN MILLS

**Manufacturer and Exporter of Superior Quality
Woollen Yarn/Carpet Yarn and Superior
Quality Handknotted Carpets**

Office and Sales Office :

BIKANER WOOLLEN MILLS

Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phones : Off. 3204
Res. 3356

Main Office

**4 Mir Bhor Ghat Street
Calcutta-700007**
Phone : 33-5969

Branch Office

**The Bikaner Woollen Mills
Srinath Katra : Bhadhoi**
Phone : 378

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र
वर्ष ४ : अंक ६
जनवरी १६८१

□

संपादन
गणेश ललवानी
राजकुमारी बेगानी

□

आजीवन : एक सौ एक
वार्षिक शुल्क : दस रुपये
प्रस्तुत अंक : एक रुपया

□

प्रकाशक
जैन भवन
पी - २५ कलाकार स्ट्रीट
कलकत्ता-७००००७

□

मुद्रक
सुराना प्रिन्टिग वर्क्स
२०५ रवीन्द्र सरणी
कलकत्ता-७००००७

सूची

सीमान्त बंगाल की
सराक संस्कृति २६१
श्रीपाल २७५
जीव २८०
जैन धर्म व जैन प्रतिमाएँ २८४
जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या २८८

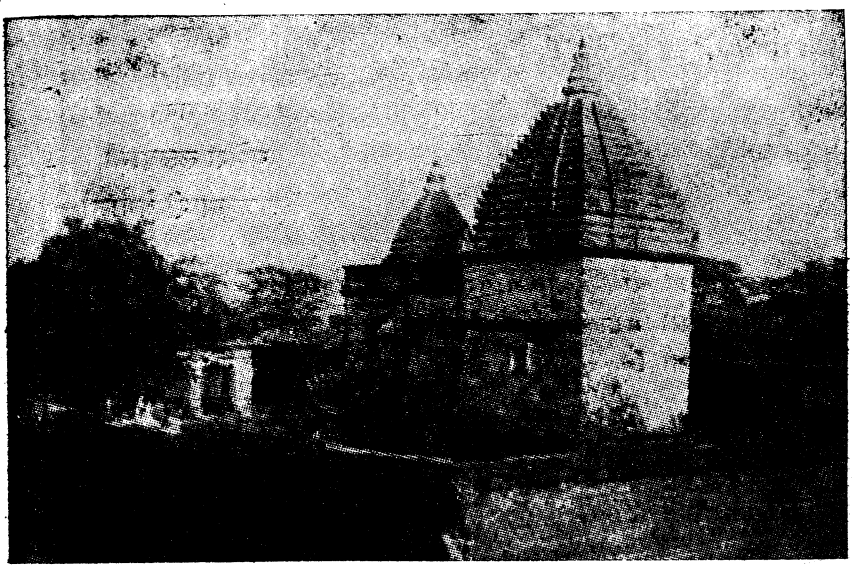

सराकों का मिलन स्थल दापुनिया का मन्दिर

सीमान्त बंगाल की सराक संस्कृति

—श्री युधिष्ठिर माझी

पश्चिमी बंगाल के पुरूलिया जिले को यदि उत्तर-दक्षिण दो भागों में बाँट दिया जाए तो हम देखेंगे कि दक्षिण के बाघमुण्डी, बलरामपुर एवं झालदा अंचल में जिस प्रकार माहात सम्प्रदाय का प्राधान्य है ठीक उसी प्रकार उत्तरी अंचल में काशीपुर, रघुनाथपुर, पाड़ा, हूड़ा, नेतुरिया आदि में सराक सम्प्रदाय का प्राधान्य है। सराक सम्प्रदाय के मनुष्यों के विषय में विशेष अनुसन्धान के अभाव में पश्चिमी बंगाल के विद्वानों के मन में कुछ भूल धारणा निर्मित हो गयी है। अनेकों का मत है कि सराक जाति के मनुष्य किसी-किसी अंचल में बिखरे हुए हैं एवं इनकी संख्या अत्यन्त अल्प है। किन्तु इनकी संख्या अल्प नहीं है, कहना होगा, पंचकोट अंचल में तो उन्हीं की संख्या अधिक है। उपयुक्त शिक्षा-दीक्षा एवं सम्प्रदायगत एकता के अभाव में इस समाज के लोग वृहत्तर समाज के लोगों की दृष्टि अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर पाए, नहीं तो इनका जो इतिहास है वह पुरूलिया जिले के अन्य किसी मानव गोष्ठी का नहीं है।

सराक सम्प्रदायी इस अंचल के आदि वासिन्दा है। ईसा पूर्व ५०० से ६०० वर्ष पूर्व यही मानभूम अंचल एक विशाल अरण्य भूमि था। कोल, भील, संथाल जाति के अलावा अन्य कोई सभ्य मनुष्य जाति यहाँ नहीं पायी जाती थी। ये आदिवासी थे वज्र की भाँति कठोर एवं विपदजनक। यही कारण था कि इन आदिवासियों को वज्र भूमिज कहा जाता था।

इसी समय जैन धर्म के प्रचारकों ने इस अंचल में आकर एक नवीन सभ्य समाज संरचना की चेष्टा की थी। जैन धर्मावलम्बी इस सम्प्रदाय के मनुष्यों को सुधी भूमिज कहा जाता था। इस सुधी भूमिज सम्प्रदाय के मनुष्य ही इस अंचल में सराक नाम से परिचित हुए। सराक शब्द आया है श्रावक शब्द से। इसका अर्थ है श्रोता। वैदिक युग के ऋषियों ने जिस प्रकार अनार्यों को हटाकर सरस्वती नदी के तटवर्ती अंचल में एक नवीन सभ्यता को प्रज्ज्वलित किया, ठीक उसी प्रकार सराकों ने भी यहाँ के वनों को काटकर मन्दिर निर्माण कर इसे साधन भजन का एक पवित्र स्थान बना दिया था। मिस्टर डब्ल्यु० डब्ल्यु० हन्टर की भाषा में :

"The early Jain devotees, like the primitive Rishis of the Vedic period, went out and established hermitage in the jungles, which became the centre of a colony of Jain worshippers."

मेजर टिकेल ने भी कहा है—"Singhbhum passed into the hands of the Surawaks."

इस कथन की सत्यता स्वीकार की है मिस्टर वी० बल साहेब ने। प्राचीन काल में सिंहभूम अंचल ताम्रशिल्प में खूब उन्नत था। मिस्टर वी० बल एक समय ताम्बे की खान का अनुसन्धान कार्य कर रहे थे। सिंहभूम जिले के अनुसन्धान करते समय उन्होंने देखा कि सिंहभूम जिले में ताम्बे की अनेक खानों का निदर्शन है। पहाड़ों पर, धान्य खेतों में, मैदानों में उन्होंने बहुत-सी प्राचीन ताम्बे की खानें पायी जिसका विवरण उन्होंने अपनी *On the Ancient Copper Miners of Singhbhum* नामक ग्रन्थ में लिपिबद्ध किया है। किन्तु कौन थे वे जिन्होंने इन खानों से ताम्र निकाल कर देश के ताम्रशिल्प को उन्नत किया ? इसका यथार्थ उत्तर दिया मिस्टर बी० बल ने स्वयं ही। वे लिखते हैं—"The more adventurous Saraks having alone penetrated the jungles where they were rewarded with the discovery of copper···"

परवर्तीकाल में सराकगण मूर्तिशिल्प में दक्ष हो उठे। छड़रा, तेलकूपी, पाकबिड़रा, देउलघाटा, दालमा, पवनपुर, बोराम, बलरामपुर, प्रभृति अंचलों में मन्दिरों का निर्माण कर सराक संस्कृति की भित्ति को मजबूत बना डाला। इन सब स्थानों में सराकों के प्राचीन ऐतिह्य का निदर्शन आज भी पाया जाता है। ये मन्दिर पुरूलिया के एक गौरवमय दिनों का स्मरण करवा देते हैं। यही सोचकर मिस्टर कूपलेण्ड सराकों को 'archaic community' कहकर सम्बोधित करते हैं। देउलघाटा में सराकों के जो मन्दिर हैं उन्हें बहुत से लोग हिन्दू मन्दिर कहने की अपचेष्टा करते हैं। वे लोग मानभूम से सराक संस्कृति को समाप्त कर देना चाहते हैं। किन्तु इतिहास को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। यहाँ के तीन मन्दिरों के विषय में मिस्टर डब्ल्यु. डब्ल्यु. हन्टर कहते है—"These three temples are all of the same type and are no doubt correctly ascribed by the people to the Saraks."

इस अंचल की सराक संस्कृति का गतिपथ सहज नहीं था। सर्वप्रथम उन्हें आदिवासियों से युद्ध कर जंगलों को काटकर बस्तियाँ बसानी पड़ी। परवर्त्ती काल अर्थात् सप्तम शताब्दी में ब्राह्मण्यवाद के धारक एवं वाहक सम्प्रदायों से जूझना पड़ा। ब्राह्मण सम्प्रदाय व कट्टर हिन्दू लोगों ने सराक संस्कृति को इस अंचल से मिटाने के लिए सराक विताड़ना का पवित्र कार्य प्रारम्भ कर दिया। जैन मन्दिरों से सराकों द्वारा प्रतिष्ठित मूर्तियों को उठाकर हिन्दू देव-देवियों की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित कर दीं। इस कार्य में उन्होंने हिन्दू राजाओं का समर्थन प्राप्त किया। परिणामतः सराकों का एक बड़ा अंश उड़ीसा के उदय-गिरि-खण्डगिरि अंचलों में भागकर वहाँ बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया। मानभूम में भी अनेकों ने धर्म बदल लिया। यहाँ तक कि ब्राह्मण धर्म के भयंकर कोप से आक्रान्त होकर स्वयं को बचाने के लिए अपने को विभिन्न प्रकार के हीन आजीविका में नियुक्त करना पड़ा। सराकों की इस अवनति का वर्णन करते हुए सर हारबर्ट रिशले ने 'भारत का जनगण' नामक अपनी पुस्तक में लिखा है—

"They have split up into endogamous groups based partly on locality and partly on the fact that some of them have taken to the degraded occupation of weaving and they now form a Hindu caste of the ordinary type..."

किन्तु, जिस जाति का इतिहास है वह जाति मरती नहीं है। सराकगण शिल्पी हैं। परिपार्श्विकता के दबाव से वस्त्र बुनने में आत्म-नियोग करने को वे बाध्य हुए थे, किन्तु बहुत कम समय में ही वे ताँत वस्त्र के दक्ष शिल्पी बन गए। उस समय सराकगण मोटा कपड़ा या सूती वस्त्र नहीं बुनते थे, वे लोग नेत या पाट के वस्त्र बुनते थे। सराकगण मध्य युग के दक्ष वस्त्र शिल्पी थे, इसे स्वीकृत करते हुए कवि कंकण मुकुन्दराम चक्रवर्ती अपने 'चण्डी मंगल' में लिखते हैं—

सराक वसे गुजराटे जीव जन्तु नाहि काटे
सर्वकाल करे निरामिष।
पाईया इनाम बाड़ी, बूने नेत पाट साड़ी
देखि वड़ वीरेर हरिष॥

उस समय वस्त्र शिल्प की दक्षता दिखाकर बाड़ी (इनाम) पाने की योग्यता एकमात्र सराकों में ही थी। कट्टर ब्राह्मण लोग सराक वस्त्र शिल्पियों को अच्छी दृष्टि से नहीं देखते थे। वे लोग समय-समय पर सराकों को जुलाहा कहकर उपहास करते थे। इसी का निदर्शन 'ब्रह्म वैवर्त पुराण' में पाया जाता

है। सराकगण वस्त्र बुनने का कार्य करने लगे थे इसीलिए 'ब्रह्म वैवर्त पुराण' के रचयिता ने उन्हें जुलाहा कहकर अभिहित किया। क्योंकि उस समय जुलाहे ही कपड़ा बुनते थे। लेकिन जुलाहों का कपड़ा मोटा अर्थात् खुंगार वस्त्र होता था। किन्तु सराकगण मोटा वस्त्र नहीं बुनते थे। वे लोग तसर शिल्पी थे। पाट और तसर के वस्त्र देश के बड़े-बड़े लोग पहनते थे। अतः 'ब्रह्म वैवर्त पुराण' का कथन भ्रममूलक है।

लम्बे समय तक ब्राह्मण और कट्टर हिन्दू समाज के लोगों का अत्याचार सहन करने के फलस्वरूप सराक सम्प्रदाय के मनुष्यों में भूमिज राजाओं के अनुग्रह से निवास करने की एक प्रवणता आ गयी थी। कवि कंकण चण्डी के युग से वर्गी आगमन काल तक सराकगण विभिन्न राजाओं के आश्रय में निवास करते रहे। धलभूम में राजा मानसिंह के आश्रय में बहुत-सी सराक प्रजा निवास करती थी। राजा मानसिंह के साथ सराकों के सम्बन्ध खराब नहीं थे, फिर भी एक समय राजा मानसिंह के सराक परिवार की किसी एक लड़की के साथ अभद्र व्यवहार करने के कारण सराकगण उनसे विरक्त हो गए थे एवं प्रतिवाद स्वरूप दल के दल लोग सिंहभूम का परित्याग कर पांचेत अंचल में आकर बसने लगे। सराकों का एक इतिहास है। उनके रक्त में है सत् और निष्ठा के बीज। वे जिस प्रकार अन्याय करते नहीं हैं उसी प्रकार अन्याय को सहन भी नहीं कर पाते हैं। उपर्युक्त घटना सराकों की इसी मनः स्थिति को प्रकट करती है। इसी ऐतिहासिक घटना की सत्यता स्वीकार कर मिस्टर कूपलेण्ड लिखते हैं—"They (Saraks) first settled near Dhalbhum in the estate of a certain Man Raja. They subsequently moved in a body to Panchet in consequence of an outrage contemplated by Man Raja on a girl belonging to their caste."

धलभूम से भागकर आने के पश्चात् सराकगणों की यह शाखा पंचकोट के राजा के श्रद्धा पात्र रूप में परिणत हो गयी। यहाँ उनका नया जन्म हुआ। अर्थात् उन्होंने जैन धर्म परित्याग कर हिन्दू धर्म ग्रहण कर लिया। वे भी अब हिन्दुओं की भाँति पदवी गोत्र एवं ब्राह्मण पुरोहित प्राप्त करने लगे।

सराकों का जैन धर्म से हिन्दू धर्म में रूपान्तरित हो जाने के पीछे एक चौंका देने वाला इतिहास है। यह समय बंगाल में वर्गी आगमन काल था। उस समय काशीपुर के राजाओं की राजधानी पंचकोट पहाड़ की तलहटी में थी। वर्गी आक्रमण से विपर्यस्त राजपरिवार के किसी एक शिशु पुत्र को छिपा-

कर सराक समाज के किसी एक व्यक्ति ने उसके प्राण बचाए थे। फिर कुछ बड़ा होने पर राजपरिवार के इस बच्चे को उन्होंने पुनः लौटा दिया था। इसी के प्रतिदान में सराकों को भी हिन्दुओं की भाँति मर्यादा और सम्मान प्राप्त हुआ। कृषियोग्य भूमि देकर राजपरिवार के लोगों ने सराकों को प्रगतिशील एवं दक्ष कृषकों में रूपान्तरित कर दिया। इस प्रसंग में मिस्टर कूपलेण्ड का कथन है—

"In Manbhum it is said they were not served by Brahmins of any kind until they were provided with a priest by a former Raja of Panchet as a reward for a service rendered to him by a Sarak who concealed him when his country was invaded by the Bargis i.e. the Marhattas."

सराक सम्प्रदायों की पद्वियाँ प्रायः राजाओं द्वारा प्रदत्त है जैसे माझी, मण्डल, नायक, पात्र, वैष्णव, सिंह आदि। उनके गोत्रों में कुछ गोत्र जैन तीर्थंकरों के नामानुसार है एवं कुछ हिन्दुओं से आए हैं। शायद ये राजा द्वारा दिए गए हैं। सराकों के मध्य उल्लेख योग्य गोत्र हैं आदिदेव, ऋषिदेव, शाण्डिल्य, अनन्तदेव, भारद्वाज, गौतम एवं व्यास। गौतम और व्यास वीरभूम के सराक लोगों में अधिक प्रचलित है।

परवर्ती काल में पंचकोट से आगत सराकगण चार भागों में विभक्त होकर स्थान-स्थान पर बिखर गए। जिन लोगों को पंचकोट के राजाओं ने जमीन आदि दी वे तो पंचकोट अंचल में ही रह गए एवं उन्हें पंचकोटिया कहा जाने लगा। जो लोग दामोदर नदी के उस पार वर्धमान जिले में चले गए उन्हें नदी पारिया और जो वीरभूम चले गए उन्हें वीरभूमीय एवं जो राँची जिले के ताम्बे वाले परगना में चले गए वे कहलाए तामारीय। इसके अतिरिक्त विष्णुपुर अंचल के जो सराकगण उस समय वस्त्र शिल्प में नियुक्त थे उन्हें कहा जाता था—'सराकी ताँती'। परवर्ती काल में सराकगण अन्य भी कई भागों में विभक्त हो गए। इनमें अश्विनी, तांती, पात्र, उत्तरकूपी एवं मान्दारानी उल्लेखयोग्य है। संथाल परगना के सराक लोगों को इस समय 'फूल सराकी', 'शिखरिया', 'कान्दाला' एवं 'सराकी ताँती' कहा जाता है। सराकगण जाति की दृष्टि से ताँती नहीं थे और न ही हिन्दू ताँती सम्प्रदाय के साथ उनका कोई योग था। फिर भी जो सराकगण ताँत शिल्प में नियुक्त थे उन्हें पेशागत कारण से

सराकी ताँती कहा जाता था। पांचेत अंचल के सराकगण तो एक लम्बे अर्से से ही कृषि कर्म में नियुक्त हैं।

सराक संस्कृति कहने से जो कुछ समझा जाता है उसका यथार्थ निदर्शन है पांचेत अंचल में। यहाँ के सराकगणों ने खूब रक्षणशील होने के कारण प्राचीन सराक संस्कृति को अब भी बचा रखा है। इस बीसवीं शताब्दी में भी यहाँ के सराकों की जो विशिष्टताएँ सभी सम्प्रदायों के मनुष्य को अपनी ओर आकृष्ट करती है वह निम्न हैं—

१. यहाँ के सराकगण पूर्णतः निरामिष भोजी हैं। सराक स्त्रियाँ भोजन बनाते समय काटा शब्द तक का भी व्यवहार नहीं करतीं।

२. सराक समाज का कोई भी मनुष्य भिक्षा वृत्ति को नहीं अपनाता।

३. स्वयं को नीच या मर्यादा रहित पेशे में नियुक्त नहीं करते।

४. सराकों का कोई भी मनुष्य किसी भी प्रकार के घृणात्मक अपराध के लिए कभी कोर्ट से दण्डित नहीं हुआ। अर्थात् इन लोगों में अपराधियों की संख्या नितान्त अल्प या नहीं है बोलने से भी अत्युक्ति नहीं होगी।

५. स्त्रियाँ खूब रक्षणशील होती हैं। किसी भी प्रकार से अन्य किसी जाति के घर खाद्य ग्रहण नहीं करती न ही वहाँ रात व्यतीत करती हैं। इसके अतिरिक्त वे लोग चमड़े का जूता नहीं पहनती।

एक लम्बे समय से इन्हीं पाँच विशेषताओं के कारण ये आकर्षणीय बने हुए हैं। विभिन्न समयों में बाहर से आनेवाले विभिन्न पण्डितों की रचनाओं में इन विशेषताओं का उल्लेख होने के कारण सराकों की सामाजिक मर्यादा बहुत बढ़ गयी है।

१८६३ खृष्टाब्द में मिस्टर ई० टि० डाल्टन ने पुरुलिया का सराक प्रभावित ग्राम झापड़ा का परिदर्शन किया। वे सराक समाज के मनुष्यों के आचार-आचरण, रीति-नीति एवं उनके व्यवहार पर मुग्ध होकर लिखते हैं—
"They called themselves Saraks and they prided themselves on the fact that under our Government not one of their community had ever been convicted of a heinous crime."

उनकी बुद्धि वृत्तियों की प्रशंसा करते हुए वे आगे और लिखते हैं—"…. who (saraks) struck me as having a very respectable and intelligent appearence."

सराकों ने अपने उन दिनों के ऐतिह्य को आज भी बना रखा है। वे एक

सुश्रृंखल जात हैं। सराक कानून के अनुसार चलना पसन्द करते हैं। किसी भी कारण से किसी दिन भी उन्होंने सरकार के प्रति विद्रोह घोषित नहीं किया। मिस्टर डाल्टन का कथन है—"They are essentially a quiet and law-abiding community, living in peace among themselves and with their neighbours."

राजनीति एक घृण्य खेल है। अन्याय और मिथ्याचार किए बिना राजनीति नहीं की जा सकती। अतः वे राजनीति नहीं करते। मिथ्याचार नहीं, मनुष्य का निर्माण करना ही उनका धर्म है। यही कारण है कि उन्होंने शिक्षण कार्य ग्रहण किया है। पांचेत अंचल के स्कूलों में जो शिक्षक कार्य करते हैं उनमें अधिकांश सराक जाति के हैं।

सराक स्त्रियों की रीति-नीति बतलाते समय सर हारबर्ट रिसले सराकों की रसोई घर का वर्णन करते हैं। उन्होंने सराकों की अहिंसा धर्म के प्रति निष्ठा और सत्यता के विषय में लिखा है—"Their name is a variant of Sravaka (Sanskrit hearer), the designation of the Jain laity; they are strictly vegetarians never eating flesh and on no account taking life and if in preparing their food any mention is made of the word cutting the omen is deemed so disastrous that everything must be thrown away."

जो वस्तु रक्त-सी लाल होती है सराकगण वह वस्तु खाना पसन्द नहीं करते। लाल पुई, गाजर, लाल सीम आदि खाना उनमें निषेध है। इसके अतिरिक्त कुकुरमुत्ता, डुमुर आदि पदार्थों को तो रसोई घर में ले जाना ही मना है। इस प्रसंग में एक सुन्दर कहावत प्रचलित है। लोकगीत के अंशरूप इस कहावत में कहा गया—

उमुर डुमुर पुडंग छाति,
तिन खायना सराक जाति।

अर्थात् उमुर, डुमुर, पुड़ंग छाति यह तीन सराक जाति वाले नहीं खाते।

सराकों के सामाजिक उत्सवों एवं विवाहादि की रीति-नीति भी खूब विचित्र है। उनके विवाह अनुष्ठान में फूल शय्या एवं सुहाग रात्रि जैसी कोई रीति नहीं है। सम्भवतः विवाह के पश्चात् भी वे लोग कुछ दिन वर-कन्या को दूर रखना चाहते हैं। यह समय पति-पत्नी के मिलन का प्रस्तुति काल है। इसीलिए इनके समाज में द्विरागमन (गौना) प्रथा खूब जनप्रिय है।

विवाह के समय वर के मस्तक पर टोपर नहीं होता। उनके मस्तक पर

पगड़ी और कागज का मोर (सेहरा) रहता है। विवाह के पहले दिन शरीर पर हल्दी व गन्ध द्रव्यादि लगाए जाते हैं। उस दिन वर के गृह में वर को एवं कन्यागृह में कन्या को, धान दूब देकर आशीर्वाद देकर वर के हाथ में सरोता एवं कन्या के हाथ में कजलौटा (काजल रखने का पात्र) देते हैं। विवाह के दिन अर्थात् विवाह की रात्रि में केवल मात्र कन्या सम्प्रदान का कार्य ही अनुष्ठित होता है। दूसरे दिन वर और कन्या को विदा नहीं किया जाता। उस दिन वर कन्या के घर पर ही रहता है। उस दिन वर-कन्या का वन्दना का दिन होता है। कन्या पक्ष के सब बन्धु-बान्धव उस दिन वन्दना या बादानी अनुष्ठान में योग देते हैं। बादानी अनुष्ठान में वर कन्या को सजाकर चँदोवा के नीचे बैठा देते हैं। कन्या की माँ या नानी माँ जैसी स्थानीय कोई महिला वर-कन्या को धान, दूब से वन्दना करती है। निमन्त्रित अतिथिवृन्द उसी समय अपना-अपना उपहार कन्या की माँ या नानी माँ को दे देते हैं। पहले इस दिन जलोत्सव मनाने की रीति थी। इस उत्सव में रंग खेला जाता था। अब यह अनुष्ठान प्रायः प्रायः लुप्त हो गया है।

दूसरे दिन सुबह वर-कन्या को विदा किया जाता है। वर-कन्या के वर-गृह पहुँचते ही वहाँ भी उत्सव की धूम मच जाती है। पहले इस दिन भी जलोत्सव की रीति थी। इसके अतिरिक्त वर-कन्या के नृत्य का भी रिवाज था। अब वर-कन्या का नृत्य भी नहीं होता है।

इस उत्सव के दूसरे दिन वर-गृह में वन्दना अनुष्ठान अनुष्ठित होता है। वरगृह के निमन्त्रित अतिथिवृन्द इस अनुष्ठान में योग देते हैं।

अभी वर्तमान में सराक जाति के देवता हैं शिव। विवाह के समय आवश्यक रूप से शिव के नाम पर चन्दा देने की रीति है। इसके अतिरिक्त सामाजिक मिलन कार्य भी शिवमन्दिर के प्रांगण में किया जाता है। पुरूलिया जिले के रघुनाथपुर के समीप दापुनिया ग्राम में सराक समाज का शिव मन्दिर है। यह मन्दिर पत्थर का बना हुआ है। सामने एक छोटा पहाड़ और इसरा का तालाब है। इस तालाब के किनारे इसरा देवी का मन्दिर है। यहाँ सराकों के तीन महीने से लेकर छः महीने तक के बच्चे की मानता मानी हुई पूरी की जाती है, मन्दिर में पूजा देनी पड़ती है। यह स्थान प्रकृति का एक सुन्दर लीला क्षेत्र है। वृक्ष-वृक्ष पर अजस्र पक्षियों के घोंसले हैं। सराक लड़कियाँ प्रकृति के इस लीला क्षेत्र में कुछ घण्टे बिताकर जाती हैं।

सराक स्त्रियों के धार्मिक एवं लोक उत्सवों में जिताष्टमी और भादू उत्सव बहुत धूमधाम से मनाया जाता है। जिताष्टमी भाद्रमास में मनायी जाती

है। अ-बंगाली लड़कियाँ इस उत्सव को जिऊतिया या जीवित पुत्रिका कहती है। यह उत्सव जीमूतवाहन के व्रत से भी जुड़ा हुआ है। इस उत्सव में केश गूँथने के समय सराक स्त्रियाँ आँवला वसाल नामक एक प्रकार का गन्ध द्रव्य व्यवहार करती हैं। यह आँवला हल्दी, मेथी एवं वसाल नामक एक प्रकार के गन्ध द्रव्य की जड़ मिलाकर बनायी जाती है। इसकी गन्ध खूब पवित्र होती है। पहले विवाह के समय इसी गन्ध द्रव्य से कन्या के केश बाँधे जाते थे। इसके अतिरिक्त गर्म मोम ढालकर भी केश बाँधने की रीति थी। प्राचीन सराकों के विवाह की फर्द्दी देखने से पता चलता है कि इस समय मोम और यही सब गन्ध द्रव्य प्रचुर परिमाण में खरीदा जाता था। वर्तमान में जिताष्टमी के अतिरिक्त वर्ण हिन्दुओं के समस्त वार, व्रत और देवी-देवताओं के उत्सव सराक स्त्रियाँ मनाती हैं।

युग-युग से सराक जाति के मनुष्य एक इतिहास की सृष्टि करते आ रहे हैं। वर्तमान में वे आत्म-विस्मृत हो गए हैं। फिर भी उनका इतिहास सृष्टि का कार्य समाप्त नहीं हुआ है। पुरुलिया के लोक साहित्य में सराक स्त्रियों का अवदान कम नहीं है। भादू पूजा के इतिहास के अतीत पृष्ठों को स्त्रियाँ ही अब तक पोषण करती आ रही हैं।

महाभारत रामायण से कहानियाँ लेकर रचित भादू गीत के जो खण्ड-खण्ड अंश विकृत अवस्था में विभिन्न लोक साहित्य में संकलित है उनके पूर्णाङ्ग और मार्जित रूप पाने के लिए सराक स्त्रियों के पास हमें जाना ही पड़ेगा। भादू उत्सव सराक स्त्रियों का एक धार्मिक व्रत उत्सव है। सराक स्त्रियों के भादू गान की जो बैठकें हैं वे इस अंचल के लोक-साहित्य के अड्डे हैं। इन सब लोक साहित्य की बैठकों में बहुत से कथामूलक भादू गान गाए जाते हैं। परन्तु इन बैठकों में पुरुषों का प्रवेश निषिद्ध रहता है। सराक स्त्रियों के कण्ठ से लिया भादू गान का 'माँ कल्याणीर घाट' गीत का कुछ अंश उद्धृत है—

चल चान करिते—
चालना दहे आलोर माला
पड़ेछे जे जलेते।
चल चान करिते....(धुया)
मा कल्याणी चान करिछेन गो
चालना दहेर घाटेते,
शंख बामून पार हइछेन

पसरा लये माथा ते।
चल चान करिते....
कि बड़े कि बटे बामुन हे...
कि हे तोमार मस्तके !
जाते आमरा शंख बामुन,
शंख आछे माथा ते।
चल चान करिते....
नामाओ शंख नामाओ शंख है,
नामाओ चालनार घाटेते।
जोड़ा शंख बाइछे पराओ
उचित मूल्य करिते।
चल चान करिते....
दश पाँच नय माता गो,
एकई आमार कथाते,
पड़िबे सो पर मागो,
पंच टाका हय दिते।
चल चान करिते...

भादू वैसे बाऊरी लोगों का लोक उत्सव है। किन्तु, पुरूलिया के पाँचेत अंचल में सामान्य-सा अनुसंधान करने पर ही देखेंगे कि इस अंचल में सबसे ज्यादा धूमधाम से भादू उत्सव सराकों के घर पर ही अनुष्ठित होता है। सराक स्त्रियों ने एक ओर जिस प्रकार भादू के प्राचीन गीतों को आज भी बचा रखा है ठीक उसी प्रकार भादू की प्राचीन मूर्तियों को अक्षुण्ण रखने में भादू मूर्ति के शिल्पियों को प्रेरणा देते हैं। पाँचेत अंचल के रघुनाथपुर थाने के अन्तर्गत सराक प्रभावित ग्राम 'दूरमूट' के मृण्मयी मूर्ति बनाने वाले शिल्पीगण आज भी पुरानी रीति से भादू मूर्त्तियाँ निर्माण करते हैं। उनकी प्राचीन रीति से निर्मित इन मूर्तियों की सबसे अधिक खरीददार भी सराक स्त्रियाँ ही होती हैं। सराक स्त्रियों के लिए भादू एक पवित्र व्रत अनुष्ठान है इसलिए वे भादू मूर्ति में एक देवी भाव निहित रखना चाहती हैं। दूरमूट ग्राम के भादू-शिल्पी भी प्राचीन रीति से तैयार भादू-मूर्तियों को 'सराक्य भादू' कहते हैं।

केवल मात्र सराकों के घर पर ही प्राचीन रीति से भादू पूजा होती है ऐसा नहीं है, इस अंचल में अनेक रक्षणशील ब्राह्मण एवं अन्यान्य उच्च सम्प्रदाय

वालों के घर पर भी भादू पवित्र व्रत अनुष्ठान के रूप में ही अनुष्ठित होता है।

बाऊरी या निम्न सम्प्रदायों की भादू पूजा में कोई विशेष वैशिष्ट्य नहीं देखा जाता, किन्तु सराक सम्प्रदायियों के घर पर भादू की सन्ध्या आरती होती है। जागरण के दिन सुबह-रात्रि में 'तोरू' की बलि दी जाती है। और समस्त रात्रि भादू के पांचाली जातीय प्राचीन गीत गाए जाते हैं। सराक स्त्रियाँ भादू की बैठकें फूलों से सजाती हैं। अजस्र शलूक फूलों से घर भर लेती हैं। भादू के पैरों तले माटि में नाक कटा (दो पाटी जातीय फूल), जवा आदि पुष्पों की पंखुड़ियों से फूल अल्पना बनाती है। फूल अल्पना बनाने में इनकी स्त्रियाँ बड़ी कुशलता प्रदर्शित करती हैं।

ये लोग भादू की बैठक में टोकरी-टोकरी मिठाइयाँ भादू के पदतल में रखती हैं। रंग-बिरंगे खाजा-गाजा भी रखती हैं। इन्हें कहते हैं भादू का 'शितल' अर्थात् भोग। इसके अतिरिक्त भादू की बैठक में दर्पण, कंघी, आलता, सिन्दूर, सुगन्धित तेल, इत्र, चन्दन, और आँवला मसाल भी रखती हैं। स्त्रियाँ भोर रात में गीत गाने के समय प्रसाधन के कार्य भी सम्पन्न कर लेती हैं।

सराक समाज में स्त्रियों को पढ़ाने का रिवाज प्रायः नहीं है। अभी हाल में कुछ-कुछ लड़कियाँ स्कूल कालेज में पढ़ने लगी हैं। पहले की स्त्रियाँ तो बिल्कुल ही लिखना-पढ़ना नहीं जानती थी फिर भी सराक स्त्रियाँ भादू पूजा के बड़े-बड़े आख्यानमूलक गीत किस प्रकार कण्ठस्थ रखती हैं सोचने पर अवाक् ही होना पड़ता है। प्राचीन ऐतिह्य, वंशगत प्रतिभा और रक्षणशीलता ने सराक स्त्रियों को एक उन्नत प्रकार की मर्यादा प्रदान की है। तभी तो समाज, जाति, धर्म सब कुछ पतन की राह पर उतर जाने पर भी इनकी मानसिकता में कोई परिवर्तन नहीं आया। वे समृद्ध नहीं होने पर भी अपने गुणों के बल पर ही शैतानों का भी मन जीत सकती हैं। पर यह इनका दुर्भाग्य है कि देश की जनता ने इनको पहचानने की कोशिश नहीं की।

पहले ही कह चुका हूँ सराकों में कोई भिक्षावृत्ति का आचरण नहीं करता। फिर इनमें कोई प्रशासनिक दायित्व पर भी नहीं है। इनके समाज में डाक्टर, इंजिनियर, विचारक आदि उच्च पदाधिकारियों का बहुत अभाव है। अतः अर्थनैतिक दृष्टि से ये पिछड़े हुए हैं। पुरूलिया के सराकों में जैसे खेत मजदूर, मील मजदूर कम हैं वैसे ही डाक्टरों एवं विचारकों की संख्या

भी नगण्य है। किन्तु, शिक्षक हैं। यहाँ के सराकगण अध्यापन कार्य को जीवन व्रत के रूप में ग्रहण करते हैं। इसके अतिरिक्त जिला के प्रगतिशील कृषक रूप में इनका बहुत नाम है।

सराक समाज के शिल्प श्रमिक वर्धमान जिले में अधिक पाये जाते हैं। यहाँ के सराकों की आर्थिक स्थिति भी अन्य सराकों की अपेक्षा अच्छी है। इस जिले के सराक परिवार के चालीस प्रतिशत से भी ज्यादा सदस्य दुर्गापुर आसनसोल के शिल्प अंचल और कोयले की खान में नौकरी करते हैं। दूसरी ओर बाँकुड़ा में मात्र दस प्रतिशत और संथाल परगना में बाईस प्रतिशत लोगों ने नौकरी पेशा ग्रहण किया है। बाँकुड़ा जिला और संथाल परगना के सराक लोगों की कृषि आय पूर्वापेक्षा कम हो गयी है। कृषि कार्य में बेकारी बढ़ जाने से पहले जो परिवार पीछे उत्पन्न धान्य का परिमाण ३० क्वींटल था वह आज कम होते हुए १८ क्वीन्टल रह गया है। जनसंख्या में वृद्धि हो जाने से प्रति व्यक्ति के हिसाब से जमीन का परिमाण भी कम हो गया है। यही कारण है कि यहाँ के सराकों में नौकरी करने की प्रवणता बढ़ रही है। मैं बाँकुड़ा, वर्धमान और संथाल परगना के सराकों की जनसंख्या एवं उनकी आर्थिक अवस्था का एक परिसंख्यान नीचे दे रहा हूँ—

जिले का नाम	परिवार की संख्या	जनसंख्या	शिक्षितगण	प्रति व्यक्ति वार्षिक आय
वर्धमान	४११	४२०५	१७०२	५७१ रु०
बाँकुड़ा	६३२	७२१६	१६०४	३२६ रु०
संथाल परगना	२५४	२६८७	१०७४	४५१ रु०

परिसंख्यान को देखते हुए शिक्षितों की संख्या वर्धमान जिले में जैसे अच्छी है उसी प्रकार व्यक्ति पीछे आय भी अन्य जिले के सराकों से अधिक है। बाँकुड़ा के सराकों की आर्थिक अवस्था एकदम अच्छी नहीं है। बाँकुड़ा, वर्धमान और संथाल परगना में सराकों की जनसंख्या के ३५ प्रतिशत मनुष्य रहते हैं। पुरुलिया में पचास प्रतिशत और वीरभूम मेदिनीपुर एवं राँची—सिंहभूम अंचल में मात्र १५ प्रतिशत सराक रहते हैं। इन सब स्थानों के एक साधारण जिले के आधार पर जनसंख्या का परिसंख्यान देने की चेष्टा कर रहा हूँ—

जिले का नाम	पुरुष	नारी	शिशु	कुल
पुरुलिया (धनबाद का सामान्य अंचल सहित)	६६४४	५८२३	४७५५	१७५२२

बाँकुड़ा	२६६०	२१३५	२३६१	७२१६
वर्धमान	१५१४	१५७७	११११	४२०५
संथाल परगना	६६१	७८५	६४१	२६८७
	१२१०६	१०३२०	६२०१	३१६३०
वीरभूम	—	—	—	१४६
मेदिनीपुर	—	—	—	४१६
राँची और सिंहभूम	—	—	—	३७८६
				कुल ३५६८१

१६६२ में एक सराक समाज के कुछ उत्साही युवकों ने गैर सरकारी रूप से सराक समाज की जनगणना का कार्य किया था। उनकी गणना के आधार पर कहा जा सकता है कि सराकों की कुल संख्या ३५६८१ हुई थी।

और एक लक्ष्यनीय विषय यह है कि वीरभूम और मेदिनीपुर जिले के सराकगण विलुप्त प्रायः हैं। इन सब स्थानों में अनेक सराक लोग अपना स्व-वैशिष्ट्य सुरक्षित नहीं रख सके। अनेक स्थानों में वे अन्य जातियों में मिल गए।

वर्धमान जिले के सराकगण फिर से अपने अतीत इतिहास को स्मरण कर समाज को नवीन रूप से निर्माण करने की चेष्टा कर रहे हैं। इस जिले का 'पूँचड़ा' अतीत में जैनों का एक तीर्थ क्षेत्र था। इस स्थान का पूँचड़ा पंच चूड़ा नाम भी शायद मन्दिर के पाँच शिखरों के कारण पड़ा है। लगता है पूँचड़ा नाम के साथ जैनों के पंचस्तूपी सम्प्रदाय का भी कुछ योग है। पूँचड़ा में तीर्थंकरों की कुछ प्रतिमाएँ एवं कुछ रहस्यमय स्थापत्य के अंश उनका नीरव ऐतिह्य लिए आज भी बचे हुए हैं।

जैनों के तथा सराकों के शिल्प कला युक्त मन्दिरों को बचाने का दायित्व आज सरकार को है। पुरूलिया जिले के बहुत से मन्दिर आज लुप्त प्रायः हैं। एक ऐतिह्य मण्डित जाति की प्राचीन संस्कृति आज ध्वंस हो रही है। इन सबकी रक्षा का भार अब देश की जनप्रिय सरकार को ही लेना होगा।

जिस जाति का इतिहास है वह जाति कभी नहीं मरती। अतीत के शत-शत अत्याचारों, अविचारों को सहन करते हुए भी सराकगण अपने मन्दिरों की भाँति ही आज भी टिके हुए हैं। आशा करता हूँ सराकों की आत्म-विस्मृति का अन्धकार कट जाएगा। वे पुनः अतीत के आलोक से पथ देखकर अपनी सुरक्षा का पथ खोज पाएँगे।

जिन ग्रन्थों से सहायता ली है :

1. Statistical Account of the District of Manbhum—W. W. Hunter.

2. On the Ancient Copper Miners of Singhbhum (Geological Survey of India)—V. Ball.

3. Statistical Account of the District of Manbhum—W. W. Hunter.

4. The People of India—Sir Herbert Risley (London. 1938), pp. 77-78.

5. Gazetteer of Manbhum District—Mr. G. Coupland.

6. Notes on a Tour in Manbhum in 1864-65—Lt. Col. E. T. Dalton.

7. Gazetteer of Singhbhum District—L.S.S. O. Malley.

८. चण्डी मंगल—मुकुन्द राम चक्रवर्ती ।

९. ब्रह्म वैवर्त पुराण ।

श्रीपाल

[पूर्वानुवृत्ति]

चतुर्थ दृश्य

[राजसभा। दरबार लगा है। राजा-रानी श्रीपाल सहित सभी दरबारी उपस्थित हैं। एक ओर मदन मंजूषा खड़ी है। अन्य ओर भाँड लोग]

वसुपाल : [मदन सेना को] प्रिय पुत्री, क्या तुम हमारे इन थगीधर को जानती हो ?

मदन सेना : जी महाराज। ये हमारे पति हैं। मैं बब्बर कुल की राजकन्या हूँ। और यह मदन मंजूषा रत्नदीप की राजकन्या है। मेरे पति चम्पाधिपति महाराज सिंहरथ के पुत्र हैं जैसा कि हमने विद्याचरण मुनि से सुना है। हमलोग रत्नद्वीप की यात्रा कर इधर आ रहे थे। किन्तु इनके साथी धवल सेठ ने हमें तथा इनका धन हस्तगत करने के आशय से इन्हें समुद्र में ढकेल दिया था। किन्तु पुण्य प्रताप से हम अपने सतीत्व की रक्षा भी कर सकीं एवं अपने पति का साक्षात्कार भी। यदि आपके मंत्री महोदय आज हमें यहाँ नहीं लाते तो कहा नहीं जा सकता कि हमारी क्या दशा होती। धवल ने हमें एक मास का समय दिया था। आज वह महीना समाप्त होने जा रहा है।

मदन मंजूषा : देव, अब आपके आश्रय में आकर हम निर्भय हो गए हैं।

वसुपाल : अब तुमलोगों को कोई भय नहीं है। [मंत्री को] मंत्रीवर, आप तुरन्त धवल को पकड़वा कर दरबार में उपस्थित करें। एक तो उसने श्रीपाल की हत्या का षड़यन्त्र किया फिर इन अबलाओं पर अत्याचार की भी ठानी।

मंत्री : जो आज्ञा महाराज ! [इशारे से द्वारी को बुलाकर यथावत् निर्देश देते हैं]

वसुपाल : [श्रीपाल की ओर मुड़कर] तुम जब चम्पाधिपति सिंहरथ के पुत्र हो तब तो मेरे भानजे लगते हो। तुम्हारा चेहरा भी

तो कमल प्रभा से मिलता है। यद्यपि मैंने अपनी कन्या का विवाह बिना गोत्र कुल जाने किया किन्तु, सौभाग्यवश यह सम्बन्ध तो मणिकंचन के योग जैसा ही हुआ है। तुम्हारी माँ कहाँ है?

श्रीपाल : कौशाम्बी में।

वसुपाल : कौशाम्बी में? चम्पा में क्यों नहीं?

श्रीपाल : जिस समय पिताजी की मृत्यु हुई मेरी उम्र केवल छः मास की थी। मेरे चाचा ने राज्य हड़प लिया था। अतः माँ ने आत्म रक्षार्थ भागकर मेरी और अपनी रक्षा की।

वसुपाल : अरे इतना सब कुछ हो गया और मुझे ज्ञात ही नहीं। तब तो तुम्हें चम्पा राज्य पुनः हस्तगत करना चाहिए।

श्रीपाल : वह तो करना ही है। इसी कार्य के लिए तो विदेश यात्रा पर निकला हूँ। धनोपार्जन करना है, सैन्य संगठन करना है।

वसुपाल : बहुत प्रसन्न हुआ मैं यह सब जानकर।
[भाँड सरदार की ओर देखकर] किन्तु, अरे ओ भाँडों के सरदार! कल तूने वह सब प्रपंच क्यों रचा था? सत्य कह वर्ना तुझे तो जीवित नहीं छोड़ूँगा।

सरदार : [थर-थर काँपते हुए] महाराज, बड़ी गलती हुई हमलोगों से। क्षमा कर दीजिए महाराज! आपके सम्मुख नाक रगड़ता हूँ। अब ऐसी गलती कभी नहीं होगी महाराज। एक परदेशी सेठ की बातों में आकर हमने यह सब किया था। लोभ ने मुझे अन्धा बना दिया था। इस सबका मूल कारण वह धवल सेठ ही है महाराज।

वसुपाल : धवल? कौन धवल? कहीं वही तो नहीं जिसे श्रीपाल ने पान दिया था? उसे लेकर मेरे सैनिक आते ही होंगे।
[द्वारपाल का प्रवेश]

द्वारपाल : महाराज! सैनिकगण धवल सेठ को पकड़ लाए हैं।

वसुपाल : उसे यहाँ तुरन्त उपस्थित करो।
[द्वारपाल जाता है। सैनिक धवल को उपस्थित करते हैं]

वसुपाल : क्यों रे दुष्ट सेठ? तूने मेरे धर्मपुत्र श्रीपाल कुमार की सम्पति हड़पने के लिए समुद्र में ढकेल दिया और जब उसे

यहाँ देखा तो भाँड कुलोत्पन्न होने का षड्यन्त्र रचा। अब मुझे सब कुछ ज्ञात हो गया है। कहना है तुझे इस विषय में कुछ ?

[धवल चारों ओर देखकर निराश हो जाता है। कोई प्रत्युत्तर नहीं देता]

वसुपाल : क्यों चुप क्यों है ? उत्तर दे।

धवल : [काँपते हुए] मैं अपराधी हूँ महाराज ! कृपया मुझे क्षमा कर दें।

वसुपाल : क्षमा ? तुझे क्षमा ? कदापि नहीं। तेरा और इन भाँडों का तो अपराध ही अक्षम्य है। तुम सबको शूली की सजा दी जाती है। सैनिकों, इस सेठ और इन भाँडों को श्मशान में ले जाकर शूली पर चढ़ा दो।

श्रीपाल : नहीं महाराज ! धवल सेठ मेरे लिए पितृतुल्य हैं। इन्होंने मेरे साथ बुराई अवश्य की है किन्तु उपकार भी कम नहीं किए हैं। मैं इनके ऋण से बोझिल हूँ। अतः आपसे मेरा यही नम्र निवेदन है कि आप इन्हें जैसे भी बने छोड़ दें। और ये बेचारे भाँड, इन्होंने जो कुछ भी किया प्रलोभन में पड़कर ही किया। आप इन्हें भी छोड़ने की ही कृपा करें।

वसुपाल : तुम्हारी बात मैं टाल तो नहीं सकता श्रीपाल फिर भी एक बार और सोचो। साँप को दूध पिलाने पर भी वह विष ही उगलेगा। समय मिलते ही यह फिर तुम्हें मारने का प्रयत्न करेगा।

श्रीपाल : राजन्, मैंने जो कुछ कहा है सोच-विचार कर ही कहा है। यदि ये पुनः ऐसा करेंगे तो अपने हीन कर्म का फल भी स्वतः ही प्राप्त करेंगे।

वसुपाल : ठीक है तब। सैनिकों, मुक्त कर दो धवल सेठ को। [सरदार की ओर देखकर] तुम लोग भी अब जा सकते हो।

सरदार : जय हो महाराज की, जय हो श्रीपाल कुमार की। [सब बाहर जाते हैं। श्रीपाल भी बाहर जाता है]

नैमित्तिक : महाराज, बताइए मैंने जो कुछ कहा था वह सत्य निकला या नहीं ? अब तो आपको श्रीपाल के विषय में कोई सन्देह नहीं रहा ?

वसुपाल : [हँसते हुए] नहीं, अब कहाँ स्थान है सन्देह को। तुमने जो कुछ कहा था अक्षरशः सत्य निकला। मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ। [कोषाध्यक्ष को सम्बोधित करते हुए] इन्हें ले जाकर इक्कीस हजार सुवर्ण पारितोषिक दो।

पंचम दृश्य

[राज प्रासाद का सम्मुख भाग। जमीन पर लहू से लथपथ एक लाश पड़ी है। पौ फट रही है। एक व्यक्ति स्नान के लिए जा रहा है—सहसा लाश देखकर]

प्रथम नागरिक : हाय ! हाय ! यह लाश किसकी पड़ी है ?

द्वितीय नाग० : अरे ! किसकी है लाश ?

प्रथम नागरिक : लगता है बेचारे को किसी ने मार डाला है।

द्वितीय नाग० : नहीं, नहीं, लगता है यह तो कोई चोर था।

प्रथम नागरिक : कैसे पता चला ?

द्वितीय नाग० : देखते नहीं महल के सप्तम खण्ड से रेशमी डोरी लटक रही है। और यह देखो, यह गोह। ऊपर चढ़ने की कोशिश करते समय यह फिसल कर नीचे गिर पड़ा है। कटारी भी तो कमर में ही लटक रही है।

प्रथम नागरिक : तुम ठीक कह रहे हो। भगवान ने इसे स्वयं ही दण्ड दे दिया। किन्तु भाई, वेश-भूषा से, शक्ल-सूरत से तो चोर नहीं लगता है यह। यह तो कोई सेठ श्रीमन्त जैसा है। [अन्य कई व्यक्ति भी आकर एकत्रित हो जाते हैं]

तृतीय नागरिक : क्या देख रहे हो वहाँ ?

प्रथम नागरिक : लाश।

तृतीय नागरिक : लाश ? किसकी लाश ?

प्रथम नागरिक : किसकी है सो तो पता नहीं। लगता है कोई चोर है।

चतुर्थ नागरिक : देखूँ—अरे यह तो धवल सेठ हैं। जिन्हें राजा ने कल ही शूली पर चढ़ाने का आदेश दिया था। कल तो यह श्रीपाल कुमार की कृपा से बच गया था।

प्रथम नागरिक : लेकिन यह सेठ यहाँ आया क्यों ?

द्वितीय नाग० : इसे किसी ने मारा नहीं है। यह तो महल में चढ़ते समय फिसल कर मरा है। वह देखो गोह और रेशम की डोरी।

चतुर्थ नागरिक : लगता है यह ईर्ष्यावश श्रीपाल कुमार को मारने के लिए चढ़ रहा था।

प्रथम नागरिक : श्रीपाल कुमार को ? जिन्होंने कि इसे बचाया था।

चतुर्थ नागरिक : छीः छीः छीः ! जैसा किया वैसा पाया। जो सजा राजा देना चाहते थे वह भगवान ने दे दी।

द्वितीय नाग० : छीः छीः कितना पापी था यह।

चतुर्थ नागरिक : पापी तो था ही। चलो जो हुआ अच्छा ही हुआ। अब श्रीपाल कुमार निष्कंटक हो गये।

[दो आरक्षकों का आगमन]

प्रथम आरक्षक : यहाँ भीड़ क्यों लगा रखी है ?

प्रथम नागरिक : देखो न यहाँ लाश पड़ी है।

प्रथम आरक्षक : लाश किसकी पड़ी है ?

चतुर्थ नागरिक : यह धवल सेठ हैं। मैं इन्हें पहचानता हूँ। हमें तुरन्त श्रीपाल कुमार को खबर कर देनी चाहिए। लगता है यह उनकी हत्या करने रात को चढ़ रहा था। दुर्भाग्यवश रस्सी से हाथ छूट गया है।

[दोनों आरक्षकों का जाना। थोड़ी ही देर में श्रीपाल को लेकर आते हैं]

श्रीपाल : कहाँ है उनकी लाश ?

प्रथम आरक्षक : इधर है देव, इधर।

[सब हट जाते हैं]

श्रीपाल : [देखते ही] ओह ! ....अन्याय का परिणाम भी कितना बुरा होता है। करनी का फल मनुष्य को इसी जीवन में मिल जाता है। [आरक्षकों की ओर मुड़कर] इन्हें आदर सहित उठाकर ले जाने का प्रबन्ध करो। मैं इनकी अन्त्येष्टि क्रिया करूँगा।

प्रथम आरक्षक : जो आज्ञा देव। [श्रीपाल के पीछे-पीछे दोनों आरक्षक जाते हैं]

प्रथम नागरिक : कितने महान् हैं श्रीपाल कुमार, कितने उदार।

[क्रमशः

जीव

[पूर्वानुवृत्ति]

—हरिसत्य भट्टाचार्य

न्यायाचार्य कहते हैं कि, आत्मा में चैतन्य समवाय सम्बन्ध से रहता है, ऐसी हम सबको प्रतीति होती है। इसके उत्तर में जैनाचार्य कहते हैं कि, यदि आप प्रतीति को ही प्रमाणभूत मानते हैं तो फिर आत्मा स्वयं ही चैतन्य स्वरूप है, ऐसी प्रतीति होती है, इसे क्यों नहीं मानते ? "मैं स्वयं अचेतन हूँ—चेतना के योग से चेतन हूँ" ऐसी प्रतीति किसी को नहीं होती। सबको ऐसी ही प्रतीति होती है कि "मैं स्वभावतः ज्ञाता हूँ"। घट पटादि अचेतन हैं, उसे "मैं ज्ञाता हूँ, ज्ञानवान हूँ" यह प्रतीति नहीं होती। यदि आत्मा अचेतन होता तो घट पटादि को भी ऐसी प्रतीति हो सकती थी। जैनाचार्यों की युक्ति ठीक-ठीक समझ में आने योग्य है। आत्मा जड़स्वभाव वाली होती तो अर्थ परिच्छेद सर्वथा अशक्य हो जाता।

नैयायिक थोड़ा और आगे बढ़कर एक दूसरी युक्ति देते हैं। वे कहते हैं कि "मैं ज्ञानवान हूँ" ऐसा हमें जो प्रतीति होती है उससे सिद्ध होता है कि आत्मा और ज्ञान पृथक्-पृथक् हैं—दोनों एक नहीं हैं। किसी की प्रतीति हो कि "मैं धनवान हूँ" तो इससे हम आत्मा और धन की अभिन्नता नहीं मान लेते।

जैनाचार्य उत्तर देते हैं कि इस प्रत्यय से आत्मा और ज्ञान अभिन्न सिद्ध होते हैं। आत्मा जड़स्वभाव हो तो यह प्रतीति कदापि नहीं हो सकती कि "मैं ज्ञानवान् हूँ"। यदि आप कहें कि आत्मा जड़स्वभावी होते हुए भी ज्ञानवान है तो फिर आप स्वयं ही अपने सिद्धान्त का खण्डन करते हैं।

"नागृहीत विशेषणा विशेष्ये बुद्धिः" यदि ज्ञानरूप विशेषण गृहीत न हुआ हो तो आत्मा रूप विशेष्य में "मैं ज्ञानवान हूँ" यह बुद्धि कैसे हो सकती है ? अब यदि आप कहें कि आत्मा और ज्ञान, दोनों ही का ग्रहण होता है, तो दूसरा प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि इस प्रकार का ग्रहण किस प्रकार हो सकता है ? विशेषणभूत ज्ञान द्वारा इस प्रकार का ग्रहण संभव ही नहीं है, क्योंकि ज्ञान स्वयं अपने ही से पहिचाना जाय यह बात आपके अपने ही न्यायमत के विरुद्ध है। "नागृहीत विशेषणा विशेष्ये बुद्धिः" को तो आप स्वयं भी मानते हैं।

कदाचित् आप कहें कि ज्ञानान्तर द्वारा इस प्रकार का ग्रहण हो सकता है, तो इसमें 'अनवस्था दोष' आ जाता है, क्योंकि वही ज्ञानान्तर ज्ञानत्व विशेषण के ग्रहण बिना संभव नहीं है। प्रकट ही यह सिद्धान्त अनवस्था दोष से दूषित है। जब तक आप ज्ञान के साथ आत्मा की अभिन्नता को न मानें तब तक "मैं ज्ञानवान हूँ" यह प्रत्यय आपको नहीं होगा। यही कारण है कि जैनदर्शन न्यायदर्शन कथित आत्मा के जड़त्व से इन्कार करता है।

नैयायिकों का दूसरा सिद्धान्त यह है कि "आत्मा कूटस्थ नित्य है" अर्थात् आत्मा सदैव अपरिवर्तित है। जैन आत्मा को परिणामी कहकर इस मत का खंडन करते हैं। वे युक्तिपूर्वक अपने सिद्धान्त की स्थापना करते हैं: "ज्ञानोत्पत्ति के पहिले आत्मा की जो अवस्था थी वही अवस्था ज्ञानोत्पत्ति के समय भी रहे तो फिर उसे पदार्थ का ज्ञान किस प्रकार हो सकता है?" सदैव अपरिवर्तित रूप में रहने को ही आप कूटस्थभाव कहते हैं। ज्ञानोत्पत्ति के पहिले आत्मा अप्रमाता है, परन्तु ज्ञानोत्पत्ति के समय वह प्रमाता है—पदार्थ परिच्छेदक है, इस प्रकार आत्मा में एक प्रकार का परिवर्तन तो होता ही है। जब आप परिवर्तन मानते हैं तो फिर आत्मा का कूटस्थभाव कहाँ रहा ?

जैन आत्मा को "स्वदेहपरिमाण" कह कर नैयायिकों के इस सिद्धान्त का खंडन करते हैं कि आत्मा सर्वव्यापक है। जैन कहते हैं कि, आत्मा को सर्वगत मानने के बाद उसके वैविध्य को मानने की आवश्यकता ही कहाँ रहती है? विविध मन के साथ के संयोग विविध प्रकार के आत्मा का अनुमान कराते हैं। पर यदि आत्मा सर्वगत व्यापक पदार्थ हो तो जिस प्रकार एक ही सर्वगत व्यापक आकाश के साथ विविध घटादि का संयोग होता है उसी प्रकार एक ही आत्मा के साथ विविध मनों का संयोग हो सकता है। आत्मा को सर्वव्यापक मानने से इस प्रकार युगपत् विविध शरीर और इन्द्रियादि का संयोग भी उसके साथ प्रतिपादित हो सकता है। इस प्रकार विविध आत्मा मानने की आवश्यकता नहीं रहती।

यदि आप कहें कि, एक आत्मा के साथ विविध शरीरादि का युगपत् संयोग होना असंभव है, क्योंकि आत्मा में परस्पर विरोधी सुख-दुःखादि भाव उत्पन्न नहीं होते तो इसके उत्तर में कहा जा सकता है कि इस युक्ति से आकाश में एक ही साथ विविध भेरियों का समवाय भी असंभव माना जायगा, क्योंकि सब भेरियों के शब्दादि परस्पर विरोधी होने के कारण भिन्न-भिन्न हैं। परन्तु प्रत्येक शब्द परस्पर विरोधी होने पर भी सुनाई देता है, यही कारण है कि आकाश एक होने पर भी उसमें विविध भेरियों का युगपत् समवाय हो सकता है।

इसके उत्तर में कहा जा सकता है कि प्रत्येक सुख-दुःख का कारण पृथक्-पृथक् होता है, जिससे सुख-दुःखादि परस्पर भिन्न होते हुए भी उनका युगपत् अनुभव होता है। इस प्रकार एक ही आत्मा के साथ अनेक शरीरादि का युगपत् संयोग होना सम्भव हो जाता है। यदि आप कहें कि विरुद्ध धर्म के अध्यास के कारण आत्मा कि विविधता माननी पड़ती है, तो फिर आकाश की विविधता क्यों नहीं मानते ?

यदि आप कहें कि, आकाश है तो एक तथापि वह बहुत से पदार्थों को अवकाश देता है, तो इसका उत्तर यह है कि आत्मा भी एक ही है और उसमें समस्त शरीरादि पदार्थ प्रदेश-प्रदेश पर संयुक्त रहते हैं। नैयायिक कहते हैं कि कोई मरता है, कोई जन्मता है और कोई काम काज में लगा रहता है; इन सब व्यापारों को देखकर आत्मा की विविधता माननी पड़ती है। जैन इसका उत्तर देते हैं कि, आत्मा का सर्वगतत्व मानने से, जन्म, मृत्यु आदि व्यापार के बारे में आत्मा का एकत्व ही सिद्ध होता है। कहीं घटाकाश उत्पन्न होता है तो अन्यत्र उसी समय दूसरे घटाकाश का विनाश भी होता है, शायद दूसरा एक घटाकाश पूर्ववत् रहता है। इन सब व्यापारों को देखते हुए भी यदि आकाश में बहुत्व मानने की आवश्यकता नहीं पड़ती तो फिर जन्म, मरण आदि व्यापारों के कारण आत्मा एक होने पर भी उसमें वह सब बन सकता है। आत्मा की विविधता आप किस कारण मानते हैं ? कोई कहे कि विविधता न मानें तो बन्ध, मोक्ष असंभव हो जाए, क्योंकि एक ही वस्तु में एक साथ बंध, मोक्षरूपी विरुद्ध भावों का एक साथ समावेश नहीं हो सकता। पर इसके विरुद्ध यह तर्क किया जा सकता है कि, किसी एक घड़े में आकाश को बन्द कर देने से घटमुक्त आकाश रहेगा ही नहीं, और घट-मुक्त आकाश के कारण घटबद्ध आकाश भी असंभव बन जाय। यदि आप कहेंगे कि प्रदेश भेद के कारण एक ही समय आकाश में बन्धन और मोक्ष होना संभव है, तब फिर सर्वगत एक ही आत्मा में प्रदेश भेद की कल्पना की जा सकती है और उसमें एक ही समय में बन्धन और मोक्ष का आरोपण हो सकता है। जैनाचार्यों के सम्पूर्ण कथन का आशय यह है कि, आत्मा को सर्वगत और सर्वव्यापक माना जाय तो फिर उसकी विविधता को स्वीकार करने की आवश्यकता नहीं रहती।

न्यायाचार्य कहते हैं कि, यदि आत्मा व्यापक पदार्थ न हो तो अनन्त-दिग्देशवर्ती उपर्युक्त परमाणुओं के साथ उसका संयोग संभव नहीं और इस

प्रकार का संयोग संभव न हो तो फिर शरीर की उत्पत्ति भी संभव नहीं। इसका उत्तर जैन इस प्रकार देते हैं कि, परमाणु समूह को आकर्षित करने के लिये—मिलाने के लिये आत्मा को व्यापक पदार्थ होना ही चाहिए ऐसा नियम नहीं है। चुम्बक की ओर लोहा आकर्षित होता है, परन्तु इससे हम उसे व्यापक पदार्थ नहीं मान लेते। कदाचित् आप आपत्ति लेंगे कि, ऐसे आकर्षण से तो तीन लोक के परमाणु आत्मा की ओर खिंच आवेंगे, फिर शरीर का प्रमाण किस प्रकार बनेगा? यदि शरीर प्रमाण अनिश्चित ही रहे तो आपके व्यापकवाद में भी यही आपत्ति आयेगी। समस्त परमाणुओं में व्याप्त आत्मा समस्त परमाणुओं को खींचे तो अन्ततः यही स्थिति होगी। यदि आप यह कहते हों कि अदृष्ट के प्रताप से शरीरोत्पत्ति के उपयोगी परमाणु ही आकर्षित होते हैं तो यही बात आत्मा की अव्यापकता को माननेवाले भी कहेंगे।

जैन सम्मत शरीर परिमाणवाद के विषय में नैयायिक एक और आपत्ति करते हैं कि, यदि यह माना जाय कि आत्मा शरीर के प्रत्येक अवयव में प्रवेश करता है तो शरीर के समान आत्मा को भी सावयव मानना पड़ेगा। आत्मा सावयव हो तो वह एक (कार्य) हुआ और आत्मा कार्य हुई तो तो फिर उसका कोई न कोई कारण भी अवश्य ही होना चाहिये। वह कारण विजातीय तो हो ही नहीं सकता, क्योंकि अनात्मा से आत्मा की उत्पत्ति नहीं हो सकती। सजातीय कारण मानना भी उचित नहीं है, क्योंकि सजातीय कारणों में भी आत्मत्व तो मानना ही होगा, अन्यथा वह सजातीय कारण ही नहीं हो सकता। इसका सार यह हुआ कि आत्मसमूह से आत्मा की उत्पत्ति होती है। नैयायिक इस बात को अयौक्तिक मत कहते हैं। एक ही शरीर में एकाधिक आत्माएँ किस प्रकार कार्य कर सकती हैं? मान लीजिये, शरीर में एक से अधिक आत्मा कारण रूप से कार्य करती हैं, तो एक कारण रूप आत्मा का कार्य अन्य कारण रूप आत्मा के कार्य से किस प्रकार मेल खाएगा? ये दोनों कार्य किस प्रकार पूर्णतः एकत्व को प्राप्त होंगे? जिस प्रकार घट में अवयव होते हैं और अवयवों का संयोग नष्ट हो जाने से घट ही नष्ट हो गया ऐसा हम कहते हैं उसी प्रकार आत्मा के भी अवयव मानने पड़ेंगे और फिर आत्मा को भी विनाशशील मानना पड़ेगा।

[क्रमशः

जैन धर्म व जैन प्रतिमाएँ

[पूर्वानुवृत्ति]

गुजराती : कन्हैयालाल भाईशंकर दवे   अनु० भँवरलाल नाहटा

सामान्यतः जैन धर्म में देवताओं के चार विभाग बतलाए हैं, उनमें ज्योतिषी, वैमानिक, भुवनपति और व्यंतर क्रमशः हैं। इन प्रत्येक विभाग के स्वतंत्र देव बतलाते ज्योतिषी विभाग में नवग्रह, नक्षत्र और तारागण का भी समावेश किया है। वैमानिक देवताओं के दो प्रकार हैं जिनमें कितने ही कल्पातीत और बाकी कल्पोत्पन्न हैं। इस दूसरे प्रकार में सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, लांतक, शुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत गिने गये हैं। जबकि प्रथम विभाग में नौ ग्रैवेयक और पांच मुख्य अनुत्तर विमान में विजय, वैजयंत, जयंत, अपराजित और सर्वार्थसिद्ध नाम धर्मशास्त्रकारों ने सूचित किये हैं। भवनवासी वर्ग में उनके दश अन्तर्भेद बतलाते हुए असुर, नाग, विद्युत, सुवर्ण, अग्नि, द्वीप, उदधि, दिक्पाल, घनिक और कुमारों के वर्ग अनुक्रम से गिनाये हैं। अन्तिम प्रकार व्यंतर का है, उसमें उनके आठ भेद पिशाच, भूत, राक्षस, यक्ष, किन्नर, किंपुरुष, महोरग और गान्धर्व बतलाये हैं। इनके अतिरिक्त निःसर्प, पांडुक, पिंगल, सर्वरत्न, महापद्म, काल, महाकाल, मानव और सम्मुख ये नौ विधान देवता होने का शास्त्रकार कहते हैं। विशेष में मानभद्र, पूर्णभद्र, कपिल और पिंगल को वीर देवता रूप में सम्बोधित किया है। इन सब देवों की प्रतिमाएँ निर्मित होती थी या नहीं—जानकारी प्राप्त नहीं है एवं वैसी कोई मूर्त्तियाँ भी गुजरात में नहीं मिलती।

अब जैन तंत्र विधानों में बतलाई हुई कतिपय देवियों के विषय में विचार करें। इनमें बतलाये गये देवों के नाम उनके पति के नामानुसार रखे गये हों, उस नामधारी देव इस सम्प्रदाय में थे, ऐसा अवश्य लगता है। किन्तु तंत्र विधानों में अधिकांश देवियों की उपासना मुख्य होने से उन सभी देवियों का नाम सामान्यतः यहाँ प्रस्तुत किया जाता है। इनमें प्रत्येक देवी मंडलों के नाम ही होने से प्रत्येक देवियों के नाम विस्तार भय से नहीं दिये गये हैं। ऐसे देवी मंडलों में—(१) सुरेन्द्र देवियाँ, (२) चामरेन्द्र देवियाँ, (३) बलि देवियाँ, (४) धरणेन्द्र देवियाँ, (५) भूतानंद देवियाँ, (६) वेणु देवियाँ, (७) वेणुधारी देवियाँ, (८) हरिकान्त देवियाँ, (९) हरि देवियाँ, (१०) अग्निशिखा

देवियाँ, (११) अग्निमानव देवियाँ, (१२) मुख्य देवियाँ, (१३) वशिष्ट देवियाँ, (१४) जलकान्ता देवियाँ, (१५) जलप्रभा देवियाँ, (१६) अमितगतीन्द्र देवियाँ, (१७) मीतवाहन देवियाँ, (१८) वेलंब देवियाँ, (१९) प्रभंजन देवियाँ, (२०) गोस देवियाँ, (२१) महागोस देवियाँ, (२२) काल देवियाँ, (२३) महाकाल देवियाँ, (२४) सुरूप देवियाँ, (२५) प्रतिरूपेन्द्र देवियाँ, (२६) पूर्णभद्र देवियाँ, (२७) मणिभद्र देवियाँ, (२८) भीम देवियाँ, (२९) महाभीम देवियाँ, (३०) किन्नर देवियाँ, (३१) सत्पुरुष देवियाँ, (३२) महापुरुष देवियाँ, (३३) अहिकाय देवियाँ, (३४) महाकाय देवियाँ, (३५) गीतरात्रि देवियाँ, (३६) गीतयशो देवियाँ, (३७) सन्निहितेन्द्र देवियाँ, (३८) सम्पन्न देवियाँ, (३९) धात्रींद्र देवियाँ, (४०) विधात्रींद्र देवियाँ, (४१) रसीन्द्र देवियाँ, (४२) ऋषिपालेन्द्र देवियाँ, (४३) ईश्वरेन्द्र देवियाँ, (४४) महेश्वरेन्द्र देवियाँ, (४५) सुवक्सी देवियाँ, (४६) विशाल देवियाँ, (४७) हसेन्द्र देवियाँ, (४८) हास्यरती देवियाँ, (४९) श्वेतेन्द्र देवियाँ, (५०) महाश्वेतेन्द्र देवियाँ, (५१) पटग देवियाँ, (५२) पटगरती देवियाँ, (५३) सूर्य देवियाँ, (५४) चन्द्र देवियाँ, (५५) सुधर्मा शक्रेन्द्र देवियाँ और (५६) ईशानेन्द्र देवियाँ आदि के छप्पन प्रकार बतलाये हैं।

इन सभी देवियों के वर्ण, वाहन, आयुध आदि उनके देवों के अनुसार होना बतला कर उनके विस्तृत वर्णन इस सम्प्रदाय के धर्म ग्रन्थों में व्यवस्थित रूप से बतलाये हैं। इनमें कितने के दो, चार या बीस हाथ होना लिखा है, प्रत्येक की ध्वजाएँ और ध्वजचिह्न भी अलग-अलग निरूपित हैं। इन सब देवों में अधिकांशतः देव हिन्दू धर्म में भी बतलाए हैं जिनके विधि-विधान व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत किए गए हैं।[१४] इससे वैदिक और जैन धर्म का पारस्परिक साम्य और नैकट्य विदित होता है। इतना ही नहीं, कितनेक देवों की उपासना दोनों ने एक साथ स्वीकार की मालुम देती है। केवल दोनों के विधि-विधान में कितनाक साम्प्रदायिक फेर-फार देखने में आता है। इन सभी देवों के व्यवस्थित विधान यदि उन ग्रन्थों में से प्रस्तुत कर उनकी प्रतिमाएँ कहाँ-कहाँ मिल सकती है उसकी प्रामाणिक जानकारी प्रस्तुत की जा सकती है, किन्तु ऐसी कोई प्रतिमाएँ गुजरात में प्राप्त नहीं हुई है अतः उनका विवेचन देना आवश्यक नहीं लगता।

---

[१४] श्री आत्माराम शताब्दी ग्रंथ में श्री विनयतोष भट्टाचार्य का लेख।

गुजरात में जैन धर्म

गुजरात में जैन धर्म के प्रचार और उसकी प्राचीनता के सम्बन्ध में आगे हिन्दू जैन और बौद्ध तीनों की ऐतिहासिक समालोचना प्रकरण में लिखा जा चुका है अतः यहाँ उसकी पुनरुक्ति करना अनावश्यक है। फिर भी इतना कहना पर्याप्त होगा कि जैन धर्म गुजरात में ई० सन् से पूर्व ही प्रचारित था, यह स्पष्ट ज्ञात होता है क्योंकि भगवान कृष्ण तीर्थंकर नेमिनाथ के चचेरे भाई थे अतः सौराष्ट्र की भूमि में ही वे हुए हैं। फिर गिरनार के खड़क लेख में निर्ग्रन्थों का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त कच्छ में भी एक शिलालेख मिला है जिसमें संवत् से पूर्व प्रथम द्वितीय शती में उस देश में जैन धर्म के प्रचार का सूचन है। काठियावाड़ स्थित ढांक और तलाजा की गुफाओं में जैन साधुओं के निवास स्थान थे, ऐसी पुरातत्त्व वेत्ताओं की मान्यता है। वल्लभी के राज्य-काल में वहाँ जैन धर्म की अच्छी प्रसिद्धि थी ऐसा देवर्द्धिगणि के उपक्रम से, वल्लभी में हुई द्वितीय वाचना के ऐतिहासिक उल्लेखों से विदित होता है। इसके सिवा गिरनार, शत्रुञ्जय और भरोंच के कितने ही प्राचीन उल्लेख जैन धर्म शास्त्रों व पुराणों में उल्लिखित हैं जिनके आधार से उन सब स्थानों में जैन धर्म का प्रागैतिहासिक काल से अस्तित्व में होना ज्ञात होता है। सातवीं, आठवीं शताब्दी में हुए भरोंच के गूर्जर राजा वीतराग और प्रशान्त राग विरुद धारण करते थे ऐसे ऐतिहासिक प्रमाण हैं, जिससे वे सब जैन धर्मानुयायी थे, ऐसा अनुमान किया जा सकता है। नौवीं शताब्दी में नवसारी दिगम्बर सम्प्रदाय का प्रमुख स्थान था ऐसा राष्ट्रकूटों के एक ताम्रशासन के आधार से विदित होता है। वल्लभी के पश्चात् पाटण की स्थापना होने के बाद भी गुजरात में जैन धर्म का खूब विकास हुआ। कुमारपाल के राज्यकाल में तो उसने राज्य धर्म रूप में कीर्ति संपादित कर ली थी। चालुक्यों के शासन-काल में निर्मित आबू-देलवाड़ा के जिनालय भारत विख्यात हैं। उसी प्रकार वस्तु-पाल-तेजपाल द्वारा भी आबू और शत्रुञ्जय पर्वत पर करोड़ों के अर्थ-व्यय से जैन मन्दिर निर्माण होने के उल्लेख संप्राप्त है। इतिहास साक्षी है कि ऐसे धर्म कार्यों में तत्कालीन नृपति वर्ग भी धर्मवीर श्रेष्ठियों को भरपूर सहायता देते थे। इतने विवेचन के पश्चात् स्पष्ट है कि गुजरात में जैन धर्म ई० सन् से पूर्व ही प्रचारित था।

प्रतिमाएँ

जैन सम्प्रदाय में मुख्यतः तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ ध्यानस्थ और योगासन मुद्रा वाली होती हैं। उनमें अधिकांश प्रतिमाएँ पद्मासन या अर्द्धपद्मासन वाली बैठी हुई ध्यान मुद्रा में मुख पर शान्त और त्याग धर्म का भाव शरीर नग्न या श्वेत वस्त्रावरित और मस्तक के केश घुंघराले या लोच किए हुए क्वचित् बताये जाते हैं। जबकि दिगम्बर सम्प्रदाय की प्रतिमाएँ एकदम नग्न ही होती हैं। चौबीसों तीर्थंकर योग ध्यान परायण बतलाये जाने के कारण उनकी सभी प्रतिमाएँ एक सदृश कला विन्यास वाली लगती हैं। फिर भी प्रत्येक के परिकर में उनके विशिष्ट चिह्न (लांछन) उत्कीर्ण होने से उसके आधार पर वह किस तीर्थंकर की प्रतिमा है, यह समझा जा सकता है। कुशान काल पर्यन्त तीर्थंकरों के परिकर में चिह्न रखने की प्रथा प्रचलित नहीं थी ऐसा मथुरा से प्राप्त प्राचीन प्रतिमाओं के आधार से विदित होता है। उसके पश्चात् ही लांछन की प्रथा प्रारम्भ होने का विद्वान लोग अनुमान करते हैं। बाद की प्रतिमाओं में तो लांछन अवश्य ही होते हैं। जब परिकर में लांछन रखने की प्रथा नहीं थी तो तीर्थंकरों के चरणों के नीचे परिकर में धर्मचक्र बनाया जाता था। इसके अतिरिक्त प्रत्येक तीर्थंकर के वक्षस्थल में भगवान श्रीकृष्ण के जैसा श्रीवत्स का चिह्न बनाया जाता है।

तीर्थंकर प्रतिमाएँ दो प्रकार की मिलती हैं, जिनमें एक तो पद्मासनस्थ और दूसरी खड़े हुए कायोत्सर्ग-तप का भाव व्यक्त करने वाली। बौद्ध प्रतिमाएँ भी इसी प्रकार की होती हैं किन्तु उनके वक्ष प्रदेश में श्रीवत्स या परिकर लांछन (चिह्न) नहीं होता, फिर भी उनकी योगारूढ़ ध्यानस्थ मूर्ति बनायी जाती है। विशेष में तीर्थंकरों की भाँति मस्तक पर छत्र की कल्पना भी नहीं बतलाई जाती। यों सामान्य दृष्टि से जैन तीर्थंकर और बुद्ध की प्रतिमा में कला विधान का सादृश्य लगता है। फिर भी शास्त्रीय दृष्टि से महद् अंतर होता है। जैन मन्दिरों में एक से भी अधिक तीर्थंकरों की मूर्त्तियाँ विराजमान होती हैं किन्तु गर्भगृह में प्रतिष्ठापित मुख्य प्रतिमा ही प्रधान गिनी जाने के कारण उसे मूलनायक कहा जाता है।

[क्रमशः

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या

अमर भारती || दिसम्बर १९८०

उपाध्याय श्री अमरमुनि के प्रवचनों के अतिरिक्त इस अंक में है 'जैन दर्शन में ईश्वर तत्व' (डा० उम्मेदमल मुणोत), 'भगवान महावीर ने कहा' (मदनलाल जैन), 'देश-विदेश की मान्यताएँ' (विजयमुनि शास्त्री)।

जिनवाणी || दिसम्बर १९८०

आचार्य श्री हस्तीमलजी के प्रवचनों के अतिरिक्त इस अंक में है 'व्याख्यान पर्याप्त नहीं' (रणजीत सिंह कूमट), 'प्रश्न व्याकरण नामक कुछ ग्रंथ' (अगरचन्द नाहटा), 'भारतीय समाज : परिवर्तन के चौराहे' (डा० सत्येन्द्र चतुर्वेदी), 'उपवास एक आवश्यक कृत्य' (दिलीपकुमार बया 'अमित')।

जैन जगत || दिसम्बर १९८०

इस अंक में है 'मन की शक्ति और सामायिक' (युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ), 'सेवाकार्य और संस्थाएँ' (स्व० रिषभदास रांका)।

श्रमण || दिसम्बर १९८०

इस अंक में है 'प्राणिमात्र के विकास का आधार जैनधर्म' (डा० महेन्द्र सागर प्रचण्डिया)।

Vol. IV No. 9 : Titthayara : January 1981
Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 30181/77

Hewlett's Mixture
for
Indigestion

DADHA & COMPANY

and

C. J. HEWLETT & SON (India) PVT. LTD.

22 STRAND ROAD

CALCUTTA-700001